68. चापाथेरीगाथा

चापा वंकहार जनपद* में किसी बहेलिये सरदार की पुत्री थी। जिस समय भगवान् बुद्ध सम्यक सम्बोधि प्राप्त करने के बाद धर्म-चक्र-प्रवर्तन करने के लिए सारनाथ जा रहे थे, उस समय उन्हें बोधगया और गया के बीच के रास्ते में उपक नामक आजीवक** तपस्वी मिला था। उपक तपस्वी ने भगवान् के प्रसन्न, इन्द्रिय, निर्मल, सुन्दर, उज्ज्वल शरीर को देख कर उनसे पूछा, "आयुष्मान ! किस कारण तुमने संसार-त्याग किया है ? तुम्हारा गुरु कौन है ? तुम्हें किसके उपदेश में आस्था है ?"

भगवान् बुद्ध ने उपक से कहा, "मैं सबको पराजित करने वाला, सबको जानने वाला, सभी धर्मों में निर्लेप हूँ। तृष्णा का

---

* वर्तमान जिला हजारीबाग, बिहार।

** उस समय के नग्न साधुओं का एक सम्प्रदाय।

विनाश कर मैं मुक्त हूँ। मैंने स्वयं अभिज्ञा प्राप्त की है। मैं तुम्हें किसे अपना गुरु बताऊँ ? मेरा कोई गुरु नहीं है। मेरे सदृश अन्य कोई नहीं है। इस लोक में और देवलोक में भी मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। इस समय मैं धर्म-चक्र-प्रवर्तन करने के लिए काशियों के नगर (वाराणसी) की ओर जा रहा हूँ। विमुक्ति की दुंदुभी बजा कर मैं इन सोती हुई अन्धी प्रजाओं को जगाऊँगा।''

उपक तपस्वी ने कहा, ''तब तो तुम अर्हत, अनन्त जिन हो सकते हो ?'' भगवान् ने जब अपने को अर्हत, अनन्त जिन बताया, तो वह उपक आजीवक बोला, ''होओगे, आयुष्मान !'' और ऐसा कह कर, सिर हिलाकर, वह (राह छोड़) बेरास्ते से चला गया। यात्रा करते-करते वह वंकहार जनपद पहुँचा। वहाँ बहेलियों के एक गाँव में ठहरा और उस बहेलिया-सरदार का अतिथि बना, जिसकी पुत्री चापा थी। बहेलिया-सरदार ने उसका आतिथ्य-सत्कार किया। एक दिन बहेलिया-सरदार अपने पुत्र और भाइयों के साथ शिकार खेलने गया और अपनी पुत्री चापा को तपस्वी की सेवा में नियुक्त कर गया और उससे कह गया कि तपस्वी को कोई कष्ट न होने पाए।

चापा बहुत सुन्दर थी। उपक तपस्वी उसके सौन्दर्य पर मोहित हो गया और भोजन छोड़ कर, उसने यह प्रतिज्ञा ले ली कि यह चापा को पाऊँगा तो जिऊँगा, अन्यथा मर जाऊँगा। बहेलिया-सरदार जब शिकार से कुछ दिनों बाद वापस आया, तो तपस्वी को मरणासन्न पाया। उसने उपक के पैर दबाते हुए पूछा, ''तपस्वी ! क्या आपको कोई बीमारी है ? बोलो, तपस्वी ! जो मुझसे हो सकेगा, मैं अवश्य करूँगा।'' उपक ने अपना मन्तव्य बता दिया। बहेलिया-सरदार ने पूछा, ''क्या कोई शिल्प भी जानते हो ?'' उपक ने उत्तर दिया, ''नहीं।'' बहेलिया-सरदार ने कहा, ''क्या बिना कोई शिल्प जानने वाला भी घर बसा

सकता है ?'' उपक तपस्वी ने उत्तर दिया, ''आपके शिकार को लेकर बेचा करूँगा।'' बहेलिया-सरदार ने उसे अपनी कन्या देना स्वीकार कर लिया और दोनों का विवाह हो गया।

कालान्तर में चापा ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम सुभद्र रखा गया। रोते हुए शिशु को चुप करने के लिए चापा अपने पति का उपहास करती हुई हमेशा कहा करती, ''उपक के पुत्र ! रो मत। आजीवक (तपस्वी) के पुत्र रो मत। माँस ढोने वाले के पुत्र ! रो मत।'' उपक को यह बहुत बुरा लगता। एक दिन उसने अपनी पत्नी से कहा, ''चापा ! तू यह कभी अपने मन में मत समझना कि मैं बिल्कुल ही गया-बीता हूँ, अनाथ हूँ और मेरा कोई सहायक नहीं है। **अनन्तविजयी** (अनन्त जिन) महापुरुष के साथ मेरी मित्रता है। मैं उनके निकट जाऊँगा।'' स्वामी की विरक्ति से आनन्द का अनुभव करती हुई चापा फिर बार-बार वैसा ही कहती।

एक दिन क्रोध के वशीभूत होकर उपक गृहत्याग के लिए तैयार हो ही गया। चापा ने उसे रोकने के लिए बहुत चेष्टा की, किन्तु व्यर्थ। उपक घर से चल दिया। पश्चिम दिशा में चलता गया। भगवान् बुद्ध सावत्थी में जेतवनाराम में ठहरे हुए थे। उन्होंने एक दिन अपने पास के भिक्खुओं से कह दिया, ''आज यदि कोई व्यक्ति आए और पूछे **अनन्त जिन** कहाँ हैं ? तो उसे मेरे पास आने देना।'' उपक ने जब आकर ऐसा ही पूछा, तो भिक्खुओं ने उसे भगवान् बुद्ध के सामने उपस्थित कर दिया। उपक ने भगवान् बुद्ध से पूछा, ''भन्ते ! क्या आपने मुझे पहचान लिया ?'' भगवान् बुद्ध ने कहा, ''हाँ, पहचान लिया। किन्तु तुम इतने दिनों तक कहाँ रहे ?''

उपक ने उत्तर दिया, ''वंकहार जनपद में।'' भगवान् बुद्ध ने कहा, ''उपक तुम इस समय बूढ़े हो गए हो। क्या तुम

भिक्खु-जीवन बिताने में समर्थ हो सकोगे ?'' उपक ने उत्तर दिया, ''भन्ते ! मैं प्रव्रजित होऊँगा।'' भगवान् बुद्ध के आदेश से उपक को प्रव्रज्या दी गई। उसने साधना के मार्ग में प्रतिष्ठित होकर शेष समय बिताया। भारत में प्राचीन काल से ही धर्म के नाम पर, अध्यात्म के नाम पर धार्मिक पाखण्ड, मिथ्या धर्म की परम्परा चली है। भगवान् बुद्ध ने इस परम्परा को तोड़ा। स्वामी के गृहत्याग से व्यथित होकर चापा ने अपने पुत्र को उसके नाना (अपने पिता) को सौंप दिया और स्वयं स्वामी की अनुगामिनी बन कर सावत्थी में जाकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। उपक के साथ उसकी जो बातें हुई थीं, उनको गाथाबद्ध कर यह बहेलिया-पुत्री हमारे लिए छोड़ गई है—

उपक

(1) **लट्ठिहत्थो पुरे आसि, सो दानि मिगलुद्दको।**
आसाय पलिपा घोरा, नासक्खि पारमेतवे॥ 292 ॥

अर्थ— *पहले का दंडधारी तपस्वी, आज मैं बहेलिया हूँ। निश्चय ही तृष्णा के भयंकर दलदल में पड़ कर मैं उससे पार निकलने में असमर्थ हुआ।*

(2) **सुमत्तं मं मञ्ञमाना, चापा पुत्तमतोसयि।**
चापाय बन्धनं छेत्वा, पब्बजिस्सं पुनोपहं॥ 293 ॥

अर्थ— *मुझे अपने सौन्दर्य में मुग्ध समझ कर, चापा अपने पुत्र को खिलाने के बहाने मेरा उपहास करती। चापा के बन्धन को तोड़ कर मैंने फिर प्रव्रज्या की शरण ली है।*

चापा

(3) **मा मे कुज्झि महावीर, मा मे कुज्झि महामुनि।**
न हि कोधपरेतस्स, सुद्धि अत्थि कुतो तपो॥ 294 ॥

अर्थ— *हे महावीर ! हे महामुनि ! मुझ पर क्रोधित मत होओ। क्रोध के वश में हुए पुरुष को मन की शुद्धि प्राप्त नहीं होती। फिर तप कैसे प्राप्त होगा ?*

उपक

(4) **पक्कमिस्सञ्च नाळातो, कोध नाळाय वच्छति।**
बन्धती इत्थिरूपेन, समणे धम्मजीविनो॥ 295 ॥

अर्थ— *मैं इस **नाला*** जगह को आज छोड़ दूँगी, अब कौन इस नाला गाँव में रहेगा ? जहाँ धर्मजीवी संन्यासी स्त्री के सौन्दर्य के जाल में बद्ध हो गए।*

चापा

(5) **एहि काळ निवत्तस्सु, भुञ्ज कामे यथा पुरे।**
अहञ्च ते वसीकता, ये च मे सन्ति ञातका॥ 296 ॥

अर्थ— *हे मेरे काले स्वामी (काल)** ! लौट जाओ। पहले की तरह ही काम-भोग में लिप्त हो जाओ। मैं तुम्हारी दासी हूँ, मेरे भाई-बन्धु भी तुम्हारा दासत्व करेंगे।*

उपक

(6) **एतो चापे चतुब्भागं, यथा भाससि त्वञ्च मे।**
तयि रत्तस्स पोसस्स, उळारं वत तं सिया॥ 297 ॥

अर्थ— *चापा ! तू मुझे जितना देने को कहती है, उसका चौथाई भाग भी यदि तेरे प्रेम को चाहने वाला पुरुष पाए, तो उससे ही वह अपने आपको धन्य मानेगा।*

---

* मगध देश में एक स्थान, बोधगया के समीप। यह उपक का जन्म-स्थान था। यहीं पर वह विवाह के अनन्तर चापा के साथ रहा था।

** उपक काले रंग का था (या उसकी आँखें काली थीं)। इसलिए उसकी पत्नी स्नेहवश उसे 'काल' (काला) कह कर सम्बोधित करती है।

चापा

(7) **काळङ्गिनिं व तक्कारिं, पुप्फितं गिरिमुद्धनि।**
फुल्लं दालिमलट्ठिं व, अन्तोदीपे व पाटलिं॥ 298 ॥

अर्थ— *हे मेरे काले स्वामी ! गिरि-शिखर पर पुष्पित तक्कारि (जंगली जलेबी) वृक्ष के समान या फूली दाड़िम वृक्ष की शाखा के समान या द्वीप में उत्पन्न पाटलि (गुलाब) पुष्प के समान, मैं सौन्दर्य और यौवन से परिपूर्ण हूँ।*

(8) **हरिचन्दनलित्तङ्गि, कासिकुत्तमधारिनिं।**
तं मं रूपवतिं सन्तिं, कस्स ओहाय गच्छसि॥ 299 ॥

अर्थ— *तुम्हारे लिए मैं शरीर में पीले चन्दन का लेप करूँगी, काशी के बने रेशमी वस्त्र धारण करूँगी। स्वामी ! इतनी रूपवती को छोड़ कर तुम कहाँ जाओगे ?*

उपक

(9) **साकुन्तिको व सकुणिं, यथा बन्धितुमिच्छति।**
आहरिमेन रूपेन, न मं त्वं बाधयिस्ससि॥ 300 ॥

अर्थ— *चापा ! जिस तरह बहेलिया पक्षी को धर पकड़ने की चेष्टा करता है, उसी तरह तू भी पकड़ने की चेष्टा कर रही है। पर तेरा सौन्दर्यमय रूप अब मुझे पहले की तरह बाँध नहीं सकेगा, तू अपने रूप का कितना ही प्रदर्शन कर ले।*

चापा

(10) **इमञ्च मे पुत्तफलं, काळ उप्पादितं तया।**
तं मं पुत्तवतिं सन्तिं, कस्स ओहाय गच्छसि॥ 301 ॥

अर्थ— *हे मेरे काले स्वामी ! यह मेरा पुत्र-रूपी फल है। देख, इसका पिता तू ही है। इस पुत्र वाली को छोड़ कर*

तू कैसे जाएगा ?

उपक

(11) **जहन्ति पुत्ते सप्पञ्ञा, ततो ञाती ततो धनं।**
पब्बजन्ति महावीरा, नागो छेत्वा व बन्धनं॥ 302 ॥

अर्थ— *ज्ञानी जन पुत्र, धन, जन सबको छोड़ कर प्रव्रज्या ले लेते हैं। महावीर पुरुष इस सांसारिक जीवन को इस प्रकार छोड़ जाते हैं, जैसे हाथी बन्धनों को तोड़ कर मुक्त हो जाता है।*

चापा

(12) **इदानि ते इमं पुत्तं, दण्डेन छुरिकाय वा।**
भूमियं वा निसुम्भिस्सं, पुत्तसोका न गच्छसि॥ 303 ॥

अर्थ— *इसी क्षण मैं तेरे इस पुत्र को यदि डंडे से या छुरी से मार कर धरती पर गिरा दूँ, तब तो पुत्र-शोक के भय से तू जा न सकेगा ?*

उपक

(13) **सचे पुत्तं सिङ्गालानं, कुक्कुरानं पदाहिसि।**
न मं पुत्तकत्ते जम्मि, पुनरावत्तयिस्ससि॥ 304 ॥

अर्थ— *निष्ठुर नारी ! यदि तू इस पुत्र को गीदड़ या शिकारी कुत्तों के मुख में भी डाल दे, तो भी मुझे लौटाने में तू समर्थ नहीं होगी।*

चापा

(14) **हन्द खो दानि भद्दन्ते, कुहिं काळ गमिस्ससि।**
कतमं गामनिगमं, नगरं राजधानियो॥ 305 ॥

अर्थ— *हाय ! यदि ऐसा ही है, तो हे मेरे काले स्वामी ! जाओ।*

तुम्हारा मंगल हो, लेकिन मुझे यह तो बता जाओ कि तुम कहाँ जाओगे ? किस गाँव में, किस नगर में या किस राजधानी में ?

उपक

(15) अहुम्ह पुब्बे गणिनो, अस्समणा समणमानिनो।
गामेन गामं विचरिम्ह, नगरे राजधानियो॥ 306 ॥

अर्थ— *पहले मैं श्रमण न होते हुए भी अपने को श्रमण मानता था और गाँव से गाँव, नगर से नगर और राजधानी से राजधानी में विचरण करता था।*

(16) एसो हि भगवा बुद्धो, नदिं नेरञ्जरं पति।
सब्बदुक्खप्पहानाय, धम्मं देसेति पाणिन।
तस्साहं सन्तिकं गच्छं, सो मे सत्था भविस्सति॥ 307 ॥

अर्थ— *अब मैंने सुना है कि उन भगवान् बुद्ध ने नैरंजना (नेरंजरा) नदी के तट पर प्राणिमात्र को सम्पूर्ण दुक्ख-विमोचनकारी धम्म का उपदेश दिया है। मैं उन्हीं के पास जाऊँगा, वे मेरे शास्ता होंगे।*

चापा

(17) वन्दनं दानि वज्जासि, लोकनाथं अनुत्तरं।
पदक्खिणञ्च कत्वान, आदिसेय्यासि दक्खिणं॥ 308 ॥

अर्थ— *तो उन अद्वितीय, लोक-स्वामी के चरणों में मेरी भी वन्दना प्रदर्शित करना। फिर लोक-स्वामी की प्रदक्षिणा कर, मेरी भी दक्षिणा उनके चरणों में अर्पित कर देना।*

उपक

(18) एतं खो लब्भमम्हेहि, यथा भाससि त्वञ्च मे।
वन्दनं दानि ते वज्जं, लोकनाथं अनुत्तरं।
पदक्खिणञ्च कत्वान, आदिसिस्सामि दक्खिणं॥ 309 ॥

अर्थ— *चापा ! तेरी प्रार्थना को पूरा करना मेरा कर्तव्य है। तू जैसा कहती है, मैं वैसा ही करूँगा। अद्वितीय, लोक-स्वामी को तेरी ओर से वन्दना प्रदर्शित करूँगा। फिर उनकी प्रदक्षिणा कर मैं तेरी भी भेंट उनके चरणों में अर्पित कर दूँगा।*

(19) ततो च काळो पक्कामि, नदिं नेरञ्जरं पति।
सो अद्दसासि सम्बुद्धं, देसेन्तं अमतं पदं॥ 310 ॥

अर्थ— *उसके बाद उपक नेरंजरा नदी के किनारे पर गया। उसने देखा कि भगवान् सम्यकसम्बुद्ध अमृत (निर्वाण) -पद का उपदेश कर रहे हैं।*

(20) दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥ 311 ॥

अर्थ— *उसने तथागत को दुक्ख का, दुक्ख के हेतु का, दुक्ख की निवृत्ति का और दुक्ख-निवृत्ति के शमन-रूपी आर्य आष्टांगिक मार्ग का, उपदेश करते हुए देखा।*

(21) तस्स पादानि वन्दित्वा, कत्वान नं पदक्खिणं।
चापाय आदिसित्वान, पब्बजिं अनगारियं॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥ 312 ॥

अर्थ— *उपक ने भगवान् के चरणों की वन्दना की। फिर उनकी प्रदक्षिणा कर उसने चापा की ओर से भगवान् की प्रदक्षिणा की और उन्हें उसका प्रणाम अर्पित किया। उसके बाद भगवान् से प्रव्रज्या लेकर वह तीनों विद्याओं का ज्ञाता हो गया। उसने बुद्ध-शासन को पूरा किया।*